"लोक" शब्द की परिभाषा, अर्थ और विशेषताएँ

'लोक' शब्द का प्रयोग प्राचीन काल से ही होता आ रहा है। यह संस्कृत के लोक् दर्शने धातु से 'घञ्' प्रत्यय जोड़ देने से निष्पन्न हुआ। इस धातु का अर्थ है- देखना। इसका लट् लकार में अन्य पुरूष एक वचन रूप लाफते होता है। इस प्रकार, लोक शब्द का मूल अर्थ है- देखने वाला'। अतः 'लोक' शब्द का प्रयोग पूरे जनसमुदाय के लिए होता है। जो इस प्रकार्य को करता है, वह 'लोक' कहलाता है। ऋग्वेद में लोक के लिए जन शब्द का प्रयोग किया गया है। इसी कारण इसका प्रयोग जनता के लिए भी किया जाता है। ऋग्वेद के 'पुरूषसूक्त' में लोक शब्द का प्रयोग जीव और स्थान- दोनों अर्थों में हुआ है-

*नाभ्या आसीदंतरीक्षं शीर्ष्णो द्यौ: समवर्तत।

अथर्ववेद भूमिर्दिदश: श्रोत्रात्त्साधा लोकां अकल्पयन्।।*

अथर्ववेद में पार्थिव और दिव्य- दो लोकों की स्थिति व्यक्त की गई है। उपनिषदों में इसका प्रयोग अनेक स्थलों पर हुआ है।

(२)

पाणिनी ने भी लोक की सत्ता को स्वीकार किया है। उन्होंने अनेक शब्दों की निष्पत्ति में उनके वेद तथा लोक में व्यवहृत स्वरूपों का अलग-अलग उल्लेख किया है। अष्टाध्यायी में लोक तथा सर्वलोक शब्दों में उन् प्रत्यय के योग से लौकिक तथा सार्वलौकिक शब्दों की निष्पत्ति की गई है। बररूचि और महाभाष्यकार पतंजलि ने इसका प्रयोग विभिन्न अर्थों में किया है। भरतमुनि ने नाट्यशास्त्र में नाटक की लोकधर्मी प्रवृत्तियों का उल्लेख किया है। महाभारत में अपने ग्रन्थ की विशेषताओं को बताते हुए रचनाकार ने लोक शब्द का प्रयोग साधारण जनता के ही रूप में किया है। यथा-

*अज्ञान तिमिरान्धस्य लोकस्य तु विचेष्टत:।

ज्ञानांजन शलाकाभिर्नेर्जोन्मीलन कारकम् ।"*

भगवद्गीता में लोक और लोक- संग्रह शब्द कई स्थानों पर प्रयुक्त हुए हैं। यहाँ भी लोक शब्द का प्रयोग साधारण जनता के लिये किया गया है। तुलसीदास जी ने रामचरित मानस में लोक वेद शब्दों का प्रयोग करके समाज

में इनकी पृथक् सत्ता को माना है। आचार्य रामचन्द्र शुक्ल ने 'चिन्तामणि' में अनेक स्थानों पर लोक शब्द का प्रयोग जनता के लिए किया है।

शब्दकोश में लोक शब्द के कई अर्थ दिये गये हैं - 1. स्थान, 2. संसार, 3. प्रदेश, 4. जन या लोग, 5. समाज, 6. प्राणी, 7. यश आदि।

उपनिषदों में इहलोक तथा परलोक शब्दों का प्रयोग लोक को स्थान विशेष के रूप में प्रकट करता है। निरूक्त में पृथ्वी, अन्तरिक्ष और द्युलोक शब्दों का प्रयोग स्थान के रूप में मिलता है। पुराणों में सात लोकों का वर्णन है- भूलोक, भुवर्लोक, स्वर्लोक, महर्लोक, जनलोक, तपलोक, सत्यलोक या ब्रह्मलोक। इनके अतिरिक्त अतल, नितल, पितल, गभस्ति, तल, सुतल, पाताल सब मिलाकर चौदह लोकों का वर्णन है। हिन्दी में लोक शब्द से ही लोग शब्द बना है। साहित्य में लोक शब्द विशेषण के रूप में प्रयुक्त हुआ है। लोकसाहित्य में इस शब्द का अत्यन्त व्यापक अर्थ है।इस तथ्य को संक्षेप में इस प्रकार कह सकते हैं-

१. भारतीय साहित्य में लोक शब्द बहुत प्राचीन काल से प्रयुक्त होता आ रहा है। लोक शब्द की उत्पत्ति संस्कृत की लोक् दर्शने धातु में धञ् प्रत्यय जोड़ने से हुई है। लोक दर्शने धातु का अर्थ है देखना। अतः मूल अर्थ हुआ देखने वाला। व्यवहार में लोक शब्द का प्रयोग सम्पूर्ण जनमानस के लिए होता है।

२. ऋग्वेद में लोक शब्द का प्रयोग जन के पर्यायवाची रूप में किया गया है।

३. पुरुष सूक्त में लोक शब्द का प्रयोग स्थान तथा जीव शब्दों के अर्थ को व्यक्त करने के लिए किया गया है।

४. अथर्ववेद में लोक शब्द से दो लोकों की स्थिति का बोध कराया गया है। ये दो लोक पार्थिव एवं दिव्य हैं।

५. उपनिषदों में लोक शब्द का प्रयोग अनेक स्थानों पर है। जैसे जैमिनीय उपनिषद् ब्राह्मण में लोक शब्द की व्याख्या विभिन्न प्रकार से विस्तार लिए हुए प्रत्येक वस्तु में निहित और प्रयास करने वाले मन की अनुस्लय के रूप में की गई है।

६. इसी परम्परा में लोक शब्द का प्रयोग महाभारत, श्रीमद्भागवत गीता आदि में भी है।

७. पाणिनी, वररुचि और पतंजलि प्रवृत्त वैयाकरणों ने लोक शब्द का प्रयोग विविध अर्थों में किया है।

८. भरतमुनि के नाट्यशास्त्र में लोक शब्द का प्रयोग सटीक रूप में किया गया है। उन्होंने नाट्यशास्त्र में लिखा है कि- इस शास्त्र की रचना लोक- मनोरंजनार्थ की जा रही है।

लोक की परिभाषा

हजारी प्रसाद द्विवेदी ने लोक शब्द को परिभाषित करते हुए लिखा है कि लोक शब्द का अर्थ जनपद या ग्राम्य नहीं है, बल्कि नगरों और गाँवों में फैली हुई वह समूची जनता है, जिनके व्यावहारिक ज्ञान का आधार पोथियाँ नहीं हैं।ये लोक-परिष्कृत, रूचि-सम्पन्न तथा सुसंस्कृत समझे जाने वाले लोगों की अपेक्षा सरल और अकृत्रिम जीवन के अभ्यस्त होते हैं और परिष्कृत रूचि वाले लोगों की समूची विलासिता और सुकुमारता को जीवित रखने के लिए जो भी वस्तुएँ आवश्यक होती हैं, उनको उत्पन्न करते हैं।

डॉ० कृष्णदेव उपाध्याय ने लोक शब्द को इस प्रकार परिभाषित किया है- आधुनिक सभ्यता से दूर अपने प्राकृतिक परिवेश में निवास करने वाली तथाकथित अशिक्षित और संस्कृत जनता को लोक कहते हैं, जिनका आधार, विचार एवं जीवन परम्परायुक्त नियमों से नियंत्रित होता है। उन्होंने आगे लिखा है कि जो लोग संस्कृति तथा परिष्कृत लोगों के प्रभाव से बाहर रहते हुए अपनी पुरातन स्थिति में वर्तमान हैं, उन्हें लोक की संज्ञा प्राप्त है। इन्हीं लोगों के साहित्य को लोक साहित्य कहा जाता है।

डॉ० श्याम परमार ने लोक की एक अनूठी परिभाषा दी है। उनका कहना है कि लोक का प्रयोग गीत, वार्ता, कथा, संगीत, साहित्य आदि से युक्त होकर साधारण जन-समाज, जिसमें पूर्वसंचित परम्पराएँ, भावनाएँ, विश्वास और आदर्श सुरक्षित हैं तथा जिसमें भाषा और साहित्यगत सामग्री ही नहीं, अपितु अनेक विषयों के अनगढ़; किन्तु ठोस रत्न छिपे हैं, के अर्थ में होता है। इस शब्द को अर्थ- विस्तार देते हुए उन्होंने लिखा है- वेद और लोक की भिन्नता वेद की प्रतिष्ठा के साथ लोक के स्वतंत्र सीमित अर्थ से ऊपर उठ चुका है। उसकी भावना वैदिक-अवैदिक दोनों क्षेत्रों को स्वाभाविक रूप से स्पर्श करने लगी है।

(६)

पं. श्रीराम शर्मा के शब्दों में- लोक शब्द उस विशेष जनसमूह का वाचक है, जो साज-सज्जा, सभ्यता, शिक्षा, परिष्कार आदि से दूर आदिम मनोवृत्तियों के अवशेषों से युक्त परिधि को समाविष्ट करता है।"

लोक और ग्राम शब्द को समान अर्थों में नहीं माना जा सकता। यह भ्रांति पं0 रामनरेश त्रिपाठी ने पैदा की है। उन्होंने लोक को ग्राम शब्द से बोध होने दिया। उनके कथन और विचार को डॉ० कृष्णदेव उपाध्याय ने

इस प्रकार स्पष्ट किया है- "पं0 रामनरेश त्रिपाठी का फोक शब्द के लिए ग्राम शब्द पर अधिक आग्रह है। इसी आधार पर उन्होंने फोक सांग का हिन्दी पर्याय 'ग्रामगीत' स्वीकार किया है। परन्तु यदि विचारपूर्वक देखा जाय, तो ग्राम शब्द लोक के भाव को व्यक्त करने में नितांत असमर्थ है। ग्राम शब्द लोक की विशाल भावना को अत्यंत संकुचित कर देता है। यदि गंभीर दृष्टि से विचार करें, तो लोक की सत्ता नगर तथा ग्राम- दोनों में समान रूप से विद्यमान है। परन्तु ग्राम शब्द ग्राम तक ही सीमित है। आज मुम्बई और कलकत्ता जैसे बड़े शहरों में भी निवास करने वाले निम्न वर्ग के लोग गीत गा-गाकर अपना मनोरंजन करते हैं। अत: उनके गीतों को लोकगीत न कहकर जो लोग ग्रामगीत कहने का आग्रह करते हैं, उनका यह आग्रह दुराग्रह मात्र है।"

(७)

यद्यपि जन शब्द का भी प्रयोग लोक के लिए किया गया है। सामान्य जनता को वेदों में जन ही कहा गया है। जनपद या जनप्रषाद शब्द भी इसी से सम्बन्धित है। लेकिन लोक शब्द की अपनी एक अलग परम्परा है। लोक शब्द फोक के भाव

को व्यक्त करने में पूर्ण सक्षम भी है। अतः लोक शब्द स्वयं में पूर्ण और उपयुक्त है।

डॉ0 श्याम परमार का कहना है कि हिन्दी का लोक शब्द फोक का पर्यायवाची है। जन या ग्राम यद्यपि फोक के अर्थ में प्रयुक्त होते हैं, तथापि अपने सीमित क्षेत्र के कारण उन्हें लोक की व्यापकता के अनुरूप नहीं मानना चाहिए। 'जन' प्राचीन शब्द है। संस्कृत एवं पालि ग्रन्थों में समाज का बोध जन से ही कराया गया है। इस दृष्टि से लोक और जन में पर्याप्त अप्राणता है, पर प्रयोग और परम्परा के प्रचार में आधुनिक फोक की अनुरूपता के लिए लोक ही अधिक उपयुक्त एवं प्रतिबिम्बात्मक है। न केवल इतना ही, बल्कि पूर्व संस्कारों के कारण वह फोक से कहीं अधिक विशाल स्तर को स्पर्श करता है।

(८)

डॉ0 वासुदेव शरण अग्रवाल का कहना है कि फोकलोर का हिन्दी पर्यायवाची शब्द लोकवार्ता है। उन्होंने इस शब्द का प्रयोग वैष्णव सम्प्रदाय मे प्रचलित 'चौरासी वैष्णवों की वार्ता' तथा 'दो सौ बावन वैष्णवों की वार्ता' शब्द के आधार पर किया है।

लोकवार्ता (फोकलोर)

लोकवार्ता शब्द का अंग्रेजी पर्याय फोकलोर है। पाश्चात्य देशों में फोकलोर शब्द पर काफी अध्ययन हुआ है। लोकमानस में प्राप्त अतीत से अब तक जो बौद्धिक, नैतिक, धार्मिक एवं सामाजिक अवस्था के चित्र उपलब्ध हो सके हैं, वे सभी लोकवार्ता का स्वरूप उपस्थित करते हैं। लोकवार्ता के लिए अंग्रेजी विद्वानों ने अनेक परिभाषाएँ दी हैं। जैसे-

मेक एडवर्ड लीच ने लिखा है- लोकवार्ता एक संज्ञानात्मक शब्द है, जो किसी भी एक जातीय, कृत्रिमता विमुक्त जनसमूह के समग्र संचित ज्ञान-भण्डार अर्थात् उसके रीति-रिवाज, लोक-विश्वास, लोक-परम्पराओं, लोक-कथाओं, जादू-टोने की क्रियाओं, लोकोक्तियों, लोकगीतों आदि का परिचायक है, जो कि न केवल उसे साधारण भौतिक बंधनों से परस्पर आबद्ध करता है, बल्कि जिसके बीच भावात्मक एकता के सूत्र भी हैं, जो उनकी हर अभिव्यंजना को न केवल अपने रंग में अनुरंजित कर लेते हैं, बल्कि उन्हें निराली और निजी विशिष्टता भी प्रदान करते हैं।"

गाम्बे ने फोकलोर की परिभाषा देते हुए कहा- "लोकवार्ता के अन्तर्गत वह समस्त संस्कृति आ जाती है, जो जन से सम्बन्ध रखती है और जो शास्त्रीय धर्म तथा इतिहास में परिणत हो गई है, जो सर्वदा अपने आप बढ़ती रही है। सभ्य समाज में इस संस्कृति का प्रतिनिधित्व परम्परा से चले आते हुए अपरिमार्जित विश्वा तथा प्रथाएँ करती हैं। असंम्यों में यह संस्कृति उनके जीवन का अंग बनी होती है। इन्हीं का शोध और इन्हीं का संग्रह लोकवार्ता में होता है।"

श्रीमती शालट सोफिया वर्न ने बताया कि यह एक जातिबोधक शब्द की भाँति प्रतिष्ठित हो गया है, जिसके अन्तर्गत पिछड़ी जातियों में प्रचलित अथवा अपेक्षाकृत समुन्नत जातियों को संस्कृत समुदायों में अवशिष्ट विश्वास,

रीति-रिवाज, कहानियाँ, गीत तथा कहावतें आती हैं। लोकवार्ता वस्तुतः आदिम मानव की मनोवैज्ञानिक अभिव्यक्ति है, वह चाहे दर्शन, धर्म, विज्ञान तथा औषधि के क्षेत्र में हुई हो, चाहे सामाजिक संगठन तथा अनुष्ठानों में अथवा विशेषतः इतिहास काव्य और साहित्य के अपेक्षाकृत बौद्धिक प्रदेश में।"

श्री आर0आर0 मैरिट ने फोकलोर की परिभाषा बताते हुए कहा है- "Folkism may be said to include the culture of the people which

has not been worked into the official religion and history, but which is and has a just been of self growth."

स्टैण्डर्ड डिक्शनरी ऑफ फोकलोर माइथालोजी एण्ड लीजेण्ड, भग 1, पृ०

401

द हैण्डबुक आफ फोकलोर, सोफियावर्न

जर्मनी, फ्रांस और इटली आदि देशों में इसके जो समानार्थी शब्द प्रयुक्त किये जाते हैं, उनका अर्थ जनता का काव्य या जनता की परम्पराएँ होता है।

हिन्दी में इस शब्द का सर्वप्रथम प्रयोग डा0 वासुदेव शरण अग्रवाल ने किया था। लोकवार्ता शब्द की व्याप्ति के सम्बन्ध में उनका कहना है कि लोकवार्ता एक जीवनशास्त्र है। लोक का जितना जीवन है, उतना ही लोकवार्ता का विस्तार है। लोक में बसने वाला जन, जन की भूमि और भौतिक जीवन तथा तीसरे स्थान में उस जन की संस्कृति- इन तीनों क्षेत्रों में लोक के पूरे ज्ञान का अन्तर्भाव होता है और लोकवार्ता का सम्बन्ध भी उन्हीं के साथ है।

लोकवार्ता की विषयवस्तु और क्षेत्र

डॉ0 वासुदेव शरण अग्रवाल ने भारतीय इतिहास के संदर्भ में लोकवार्ता के अध्ययन को जनपदीय अध्ययन से सम्बद्ध किया है। उन्होंने लोकवार्ता के

अध्ययन हेतु तीन मार्ग सुझाए हैं- 1. भूमि और भूमि से सम्बन्धित वस्तुओं का अध्ययन, 2. भूमि पर बसने वाले जन का अध्ययन तथा 3. जन की संस्कृति अथवा उसके जीवन का अध्ययन।

आधुनिक साहित्यकार एवं लोकवार्ताविद् उपर्युक्त सुझावों का समर्थन करते हैं। इस सन्दर्भ में डॉ0 वासुदेव शरण अग्रवाल ने लिखा है कि पहले हम यक्ष भूमि का सर्वांगीण अध्ययन करते हैं- भूमि की मिट्टी, उसकी चट्टानें, उस पर बहने वाली जलधारा, वृक्ष-वनस्पति, औषधियाँ, पशु-पक्षी आदि। भूमि के भौतिक रूप से उठकर हम उस पर बसने वाले जन को देखते हैं। उनकी जातियों का परिचय, रहन-सहन, रीति-रिवाज, नृत्य-गीत, उत्सव, मेले आदि का अध्ययन करते हैं। जनता की सभ्यता और संस्कृति का अध्ययन तीसरा कार्य है। जनता का इतिहास, उसका जीवन-दर्शन और भाषा का सूक्ष्म

अध्ययन इसमें सम्मिलित है। डॉ० वासुदेव शरण अग्रवाल के उपर्युक्त विवेचन से लोकवार्ता शब्द का स्वरूप स्पष्ट हो जाता है।

1. आचरण अभ्यास से सम्बन्धित विश्वास

विषय-

1. पृथ्वी-आकाश

2. वनस्पति-जगत

3. पशु-जगत

4, मानव

6. मनुष्य निर्मित वस्तुएँ

6. आत्मा तथा पुनर्जन्म

7. देवी-देवताओं आदि पानमानवी योनियाँ

8. शकुन-अपशकुन, भविष्यवाणियाँ एवं आकाशवाणियाँ

9. जादू-टोने

10 रोगों और रसायनों की विद्या |

2. रीति-रिवाज

विषय

1. सामाजिक तथा राजनैतिक संस्थाएँ

2. व्यक्तिगत जीवन के उद्गार

3. व्यवसाय, धन्धे तथा उद्योग

4. तिथियाँ, व्रत एवं त्यौहार

5. खेल-कूद व मनोरंजन।

3. कहानियाँ, गीत और कहावतें

इस वर्ग के अन्तर्गत पद्यबद्ध कहावतें भी सम्मिलित की गई हैं। कहानियाँ भी अनेक, प्रकार की हो सकती हैं, यथा - जो सत्य मानकर कही जाती हैं, जो केवल मनोरंजन के लिए कही जाती हैं, जो केवल आश्चर्य एवं चमत्कार उत्पन्न करने के लिए कही जाती हैं आदि।

लोकवार्ता को लोक-संस्कृति भी कह सकते हैं। हमने देखा कि फोकलोर को विद्वानों ने लोकवार्ता कहा, लेकिन डॉ० कृष्णदेव उपाध्याय ने लोकवार्ता शब्द पर आपत्ति की है। उन्होंने फोकलोर या लोकवार्ता के लिए लोक-संस्कृति शब्द का प्रयोग किया है। उन्होंने फोकलोर के लिए हिन्दी पर्यायवाची शब्द लोकवार्ता बतलाया है। परन्तु इस शब्द को ग्रहण करने में अनेक आपत्तियाँ दिखलाई पड़ती हैं। प्रथम तो यह शब्द पर्याप्त व्यापक नहीं प्रतीत होता। लोकवार्ता शब्द में अधिक से अधिक लोककथा या लोकचर्चा का भाव वहन करने की क्षमता है। संस्कृत के कोशों में इसका अर्थ प्रवाद, अफवाह या किंवदन्ती दिया गया है। इस प्रकार, संस्कृत के कोशों में वार्ता शब्द का प्रयोग ज्ञान या लोर के अर्थ में कहीं भी नहीं किया गया है। अतः डॉ० अग्रवाल के

लोकवात शब्द में अव्याप्ति दोष होने के कारण इसे ग्रहण नहीं किया जा सकता।"

लेकिन अन्य विद्वानों ने तो लोकवार्ता शब्द को ही स्वीकार किया है। इस सम्बन्ध में डॉ० श्याम परमार के विचार उल्लेखनीय हैं। जिस प्रकार

फोक का हिन्दी रूप लोक कहीं अधिक व्यापक है, उसी प्रकार लोकवार्ता शब्द फोकलोर से अधिक विस्तृत भावों का वहनकर्ता है।

लोकवार्ता शब्द हिन्दी में क्रमशः अपना स्थान निर्धारित कर चुका है। नवीन पर्यायों के सुझावों और आग्रह से लोकवार्ता के प्रति जमी हुई आस्था और भी दृढ़ होती जा रही है। कुछ वर्षों पूर्व श्री कृष्णानन्द गुप्त के सद्प्रयत्नों से प्रकाशित 'लोकवार्ता' त्रैमासिक ने इसकी पैठ गहरी कर दी और आधुनिक हिन्दी रचनाओं में इसका निरन्तर प्रयोग इसके अस्तित्व को स्थायित्व प्रदान करने में सफल हुआ।

इस तरह, लोकवार्ता में लोक शब्द पर कोई आपत्ति नहीं, लेकिन वार्ता शब्द प्रचलन की दृष्टि से अनेकार्थी है। इसके कुछ अर्थ इसके आशय के लिए

सटीक नहीं प्रतीत होते और लोक-संस्कृति शब्द सम्पूर्ण आशय को अपने में समेट लेता है। अतएव डॉ० कृष्णदेव उपाध्याय का दिया हुआ शब्द 'लोक-संस्कृति' इसके लिए अधिक उचित प्रतीत होता है। डॉ० उपाध्याय ने लिखा है कि हिन्दी में लोक-संस्कृति चिर-परिचित शब्द है। इसके उच्चारण मात्र से ही जनजीवन का चित्र, उनकी संस्कृति की झाँकी हमारी आँखों के सामने उपस्थित हो जाती है। जब हिन्दी में यह शब्द पहले से विद्यमान है, तब लोकवार्ता, लोकयान तथा लोकायन जैसे अप्रचलित शब्दों का निर्माण कर उन्हें प्रचारित करने का प्रयास करना कहाँ तक संगत है? कुछ लोग यह कह सकते हैं कि लोक-संस्कृति शब्द के पर्याय रूप में प्रयुक्त 'फोक कल्चर' और 'फोकलोर' में कोई विशेष अन्तर नहीं है, दोनों की सीमाएँ एक दूसरे के छोर को छूती हुई दिखाई देती हैं। इस बात को भारतीय लोक संस्कृति संस्थान के अधिवेशन में अनेक विद्वानों ने स्वीकार भी किया है और लोकवार्ता के स्थान पर लोक-संस्कृति शब्द को उचित बतलाया है। अब लोक-संस्कृति का ही प्रयोग लोकवार्ता के स्थान पर किया जाना चाहिए।

लोक साहित्य का क्षेत्र

लोक- साहित्य का क्षेत्र व्यापक और विशाल है। जहाँ भी लोक है, लोक की अनुभूतियाँ और अभिव्यक्ति हैं- वहाँ पर लोक-साहित्य भी है। जन सामान्य का हँसना, रोना, गाना, खेलना-कूदना, आदि सभी सामान्य क्रियाओं से लेकर उत्सव, पुत्र-जन्म, विवाह, मरण आदि सभी संस्कारों पर गाये जाने वाले गीत लोक-साहित्य के कोष की अमूल्य निधि हैं।

लोक-साहित्य जनसामान्य के अंक में पोषण प्राप्त करता है, जन सामान्य के दुलार में खिलता है, जन सामान्य की मृदुल लोरी सुनकर ही आँखें खोलता है

और उनके अनुराग तथा विषम परिस्थितियों, उनके विषम थपेड़ों में सम और विषम परिस्थितियों को झेलता हुआ प्रौढ़ होता है।

डॉ0 कुन्दन लाल उप्रेती ने लिखा है कि एक समय था, जब जनता की सरलता, स्वाभाविकता तथा स्वच्छंदता से यह साहित्य विभूषित रहता था। यह साहित्य उतना ही स्वाभाविक था, जिनता जंगल का फूल। यह उतना ही स्वच्छन्द था, जितना आकाश में विचरने वाली चिड़ियाँ। उतना ही सरल एवं पवित्र था, जितना गंगा की निर्मल धारा। उस समय के साहित्य का जो अंश आज अवशिष्ट रह गया है, वही हमें लोक-साहित्य के रूप में उपलब्ध होता है।

अतः लोक-साहित्य के क्षेत्र के अन्तर्गत वे सभी रचनाएँ समाहित हो जाती हैं, जो जन भाषा के माध्यम से अभिव्यक्त होती हैं। इन रचनाओं में प्रधानता होती है- लोकगीतों की। लोकगीत छोटे भी होते हैं और बड़े भी होते हैं। जो गीत बड़े होते हैं, वे लोकगाथा अथवा लोककथा कहे जाते हैं। आचार्य रामचन्द्र शुक्ल ने इनको 'वीर गाथा' की संज्ञा दी है। ये सभी गीत विभिन्न व्यक्तियों, ऋतुओं, पर्वों और त्यौहारों, सामाजिक आचार-व्यवहार और जीविका आदि से सम्बन्धित हैं। इस सम्बन्ध में डॉ0 राहुल सांकृत्यायन का यह अभिमत समीचीन प्रतीत होता है कि सभ्यता के प्रभाव से दूर रहने वाली, अपनी सहजावस्था में वर्तमान, जो निरक्षर जनता है, उसकी आशा-निराशा, हर्ष-विषाद, जीवन-मरण, लाभ-हानि, सुख-दुःख आदि की अभिव्यंजना जिस साहित्य में होती है, उसे लोक-साहित्य कहते हैं।"

सच बात तो यह है कि लोग-गाथाओं और लोक-साहित्य की परम्परा काफी पुरानी है।अनेक शिष्ट साहित्यकार भी लोकगीतों को नया रूप दे देते हैं,

जो शिष्ट साहित्य की कोटि में आ जाता है। बौद्धिक साहित्य के आख्यान, बौद्ध साहित्य की जातक कथाएँ, पुराण ग्रन्थों में अनेक आख्यान, जैन पुराण, कथासरित्सागर तथा पंचतंत्र आदि में लोक-साहित्य को शिक्षा साहित्य का स्वरूप

प्रदान किया गया है। अतएव इन सबको लोक-साहित्य की ही कोटि में रखकर देखना होता है। लोक साहित्य का अध्ययन करते समय ध्यान में रखना होता है कि धर्मशास्त्र, समाजशास्त्र, मनोविज्ञान, पुरातत्व, इतिहास आदि भी इसी सीमा के अन्तर्गत आते हैं। इस प्रकार, हम देखते हैं कि लोक साहित्य अनेक क्षेत्रों में पदार्पण करता हुआ विज्ञान के क्षेत्र को भी स्पर्श कर चुका है।

डॉ0 कृष्णदेव उपाध्याय ने लोक-साहित्य की व्यापकता को सिद्ध कने के लिए लोक-साहित्य को मानव-समूह के विविध पक्षों, वर्गों, जातियों एवं विविध आयु वर्गों के मनुष्यों को आनन्द-लाभ कराने के लिए विशाल वांङ्मय के रूप में स्वीकार किया है। उनके अनुसार, लोक-साहित्य का विस्तार अत्यन्त व्यापक है। साधारण जनता जिन शब्दों में गाती है, रोती है, हँसती है, खेलती है- उन सबको लोक-साहित्य के क्षेत्र के अन्तर्गत रखा जा सकता है।

इस प्रकार, हम देखते हैं कि लोक-साहित्य की व्यापकता मानव के जन्म से लेकर मृत्यु तक है तथा स्त्री-पुरुष, बच्चे-जवान तथा बूढ़े लोगों की सम्मिलित सम्पत्ति है। अतः लोक-साहित्य के अन्तर्गत सम्पूर्ण लोकजीवन समाहित है। अतएव इसके क्षेत्र को निर्धारित करना बड़ा कठिन कार्य है।

सामाजिक, पारिवारिक, ऋतु सम्बन्धी, कृषि सम्बन्धी, श्रम सम्बन्धी गीतों के अतिरिक्त राजनीतिक एवं राष्ट्रीय चेतना से परिपूर्ण गीत भी लोक-साहित्य के क्षेत्र में आते हैं। गाँव के बूढ़े जाड़े में आग तापते समय कहानियाँ सुनाते हैं, दादी माँ छोटे बच्चों को सुलाने के लिए लोरियाँ गाती हैं, भूत-प्रेत भगाने के लिए ओझा-सोखा पचरा गीत गाते हैं, लोक-मनोरंजन के लिए नौटंकी, स्वांग, लोकनृत्य, रामलीला, रास-लीला आदि का आयोजन, नित्य प्रति व्यवहार में आने वाली कहावतें, लोकोक्तियाँ आदि लोक-साहित्य के अन्तर्गत आती हैं।